

मालव

विष सेमार पवनासन हारे ।
पावक सम धनि मान तुषारे ॥
नोरहिँ काजर बहि महि परह ।
ससिँ बनि मसि सञ्जन जनि वमइ ॥
ए पहु कह वहुँ कत्रोन उपाइ ।
अपस्व वेदन की करति साइ ॥
त्रिपुरासुर रिपु रिपु सर सहइ ।
अवधि आसेँ केवल जिव बहइ ॥
हृदय सिनेह दहन सत दहइ ।
कहहि न पारिघ जत दुख सहइ ॥
सिद्धि नरसिह भन मुनि खलि बानी ।
सिनेह राव प्रभु पर दुख जानी ॥
—भा० गी० सं०, पद संख्या—१६

[अर्थ—कमल, सेमार ओ साप (आहि तुषार से) हरि गेल अछि, (ताहि) तुषार केँ घग्घा (तायिका) अग्नि सहस (दाहक) बुझैत अछि। मोर (बहला) सँ (आखिक) काजर वहि कऽ (घोजरि कऽ) पृथ्वी पर खसैत अछि, जेना (मुख छपी) चन्द्रमा सँ दास कए (नयन छपी) खञ्जन सोत्तिक बमन कऽ रहल हो। हे प्रिय! कहि दिअ (जे एकर) की उपाय? (एहि बिरह अन्ध) अपूर्व वेदना सँ ओ (तायिका) की करत? (ओ) कामधेयक बाण (क प्रहार) केँ सहि रहल अछि। केवल अवधिक आश मे जीवन (धारा) प्रवाहित छैक (अर्थात् ओ केवल अर्थात् अर्थात् निर्धारित अवधिक आश लगौने प्राण धारण केँने अछि।) हृदयक (तरल) स्नेह अग्नि सहस प्रज्वलित भऽ रहल छैक। (ओ) कतेक दुख भोगि रहल अछि से कहि नहि सकैत छी। सखीक वचन केँ सुनि सिद्धि नरसिंह कहैत छथि—प्रभु (श्री कृष्ण) दोसरक दुख केँ जानि स्नेह रखैत छथि।]

काह्यार

रहए न धैरज हेरि मुख पङ्कज लोभी लोचन भुङ्गे ।
तुम कुचयुग जनि गङ्गल परसमति कनक धरावर भुङ्गे ॥
कामिनि मान न करहु सब ठामा ।
लाप मदन सर जिव एहि अवसर आधे विधेक तुम रामा ॥
आरति सञ्चर मनमथ कुञ्जर जेल मगन गुन पङ्के ।
हृदय निकारण तुम प्रति दासुन जुग भरि रहल कनकु ॥
उचित न मानल मोर अकरम बल जत हम कह परकारे ।
विध विनय रतने देह मान धन भन सिद्धिनरसिंह सारे ॥

—भा० गी० सं०, पद सख्या-२०

[अर्थ—अहाँक मुखकमल के निहारि नयनरूपी लोलुप भ्रमरके धेरे नहि रहि जाइछ। अहाँक दुनु उरोज लगैछ जेना सोनक पहाड़क शिखर पर स्पर्शमयिक रचना रह्य। हे कामिनी ! सभ ठाम मान जुनि करू। कामदेवक असंख्य बाण सँ (आहुत हमर) प्राण एह समय मे जीबि रहल अछि। (तइओ त) अहाँके बिबेक हो। धार्ती भेल संचरण करैत कामदेव रूपी गज अहाँक गुणक पाँक मे निमग्न भऽ भेल। (ओकर उद्धार कहाँ धरि करितिएक जे) अहाँक हृदय अत्यन्त कठोर बनल अछि। एहि सँ युग-युगान्तर धरिक लेल कलंक रहि जेत। हम जतेक चेष्टा कौल हमर कर्म दोषे अहाँ तकरी उचित नहि मानल। प्रियतमक विनय (रूपी) रत्नकेर (विनिमयमे) अपन मान रूपी धन अर्पित करू। सिद्धि नरसिंह एहि सार वस्तु के कहैत छथि।]

आसावरी

३

सजल नलिन दल सेजे ।
देह बह हुतबह तेजे ॥
तरब कजोन परकारे ।
बिन्ह पयोनिधि पारे ॥
सोध सहस सखि पारे ।
जनि सुन बन भेल वासे ॥
सुमरि सुमरि तयु रङ्गे ।
अनुखन जनि हरि सङ्गे ॥
तइअओ हनय पैचवाने ।
बिनु हेतु हमर पराने ॥
उतरत सबे दुख भारे ।
भन सिद्धि नरसिंह सारे ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२१।

[अर्थ—सजल कमल पत्रक शय्या ! (मुद्रा) देह (जेना) अभिनक उराला सँ दहकैत छथि । विरह समुद्रक संतरण कोन प्रकारे करब ? महल मे सहस्रो सखी लग मे छथि तथापि (एकटा प्रियतमक अभाव मे) जेना सून्ध बनगे बसैत होइ । हुनक केलि-क्रीड़ा केँ स्मरण कए लगैछ जेना हरि (श्री कृष्ण) निरन्तर संगे होथि । तथापि पंच-बाण अपन (अपन पांचो बाण सँ) प्रकारण हमर प्राण केँ बेधैत छथि । सिद्धि नरसिंह (नायिका सँ) सार (वस्तु) कहैत छथि जे समस्त दुखक भार उतरि जेत (अर्थात् हरिक समागम भेने कोनो कष्ट नहि रहत ।]

विनाश

४

पन्नग भूषण मलयपवन ध्वजक होम उदासे ।
सत्रन सेवन मानसी केवल चाँदित चाँद हुतासे ॥
साशनि पुरुष सञ्चित पावै ।
पाशोल मानिक विधि अहमिक हुरल दए संतापे ।
मान भवन जेतन कानन विषय विष समाने ।
मदन परम निर्दम हृदय मरम मारल बाने ॥
करहु सुजन सज्जन जतन जे मोर रह पराने ।
सृष्टि सुकृति मिल पकट बेहो सिद्धि नरगिह भाने ॥

—भा० गी० स०, पद संख्या २२

[अर्थ पन्नगक भूषण बला (अर्थात् सर्प के भूषण सट्टा धारण कैनहार) मलय पर्वत पर सँ चलल बसात सँ कटे होइछ । सेमार केवल सरोवरे मे सजल अछि, (एतय त । चानन ओ चन्द्रमा (सेहो जेना) आगि हो । हे साजनि ! पूवें सांचित पापक कारखें, प्राप्त केल (प्रियतम स्त्री) माणिक्य केँ अकस्मात् हरण कय विधाता संताप दऽ गेलाह । भवन जेना कानन रह्य सेना मानल आ' विषय केँ विषवत् । कामदेव अत्यन्त कठोर हृदय छथि, मर्म पर बाणक आघात केलन्हि । (हे साजनि !) सुजन (श्री कृष्ण) क संग समागमक यत्न करह जाहि सँ हमर प्राण रह्य । सिद्धि नरसिंह कहैत छथि । सुकर्म सँ सुमुखी प्रकट ओ व्यक्त भए भेटैत छथि ।]

५

कत्रोने कलावति रे रे दड़ पुने ।
बाधल हमर पुरुष पुने ॥
निमिष आंतर जाहि रे रे साजनि ।
मोरें मने सहस्र जोजन जनि ॥
हृदय धरब आवे रे रे कत्रोने परि ।
कतहु न देखिष निठुर हरि ॥
नयन गरए जल रे रे पथ हेरि ।
गुन गन मुमरि सतओ धेरि ॥
हनए मनोभव रे रे पुनु पुनु ।
अनुखन विरह विकल तनु ॥
घेरमे पाओब रे रे हितजन ।
तुअ गुने सिद्धि नरसिंह भन ॥

—भा० गी० सं०, पद सख्या — २३

[अर्थ—कोनो कलावती अपन हह बंधन में हमर पूर्वक पुष्प केँ चान्हि लेलक ? हे माननि ! निमित्त भरिक अन्तर हमरा मतमें जेना सहस्र योजनवत् भऽ जाइत छल । (सैह आइ जखन वस्तुतः दूर चल गेल छथि त) मान हम कोन तरहें धैर्य धारण करब, जखन कि निधुर हरि (श्री कृष्ण) केँ कतहु नहि देखैत छियेह । बाट तकंत, आंखि सँ मोर बहि रहल छथि । सँकड़ो बेर गुण सभक मुगिरन करैत छी । कामदेव बेर-बेर बेचि रहल छथि । शरीर प्रतिक्षण विरह सँ विकल छथि । धैर्य रखने, अहाँ अपनहि गुण सँ, अपन हितेपी (श्री कृष्ण) केँ प्राप्त करब, सिद्ध नरसिंह (एहि विषय केँ) कहैत छथि ।]

बिनु भय मन धरि कयल सरन हरि
आवे तुम बुझल उदासे ।
जे आवे जिय सह अधिक पेषति रह
तसु सङ्गे करह बिलासे ॥

माधव कि कहव हमें तोह रामे ।
जे जत अलल भल सबे विपरित भल
हमर करम परिनामे ।
प्रथम जानल हमे परम मुगुध भने
हम सन तुम नहि देहा ।
दखत अनित्य वम हृदय फुलित मग
भलेँ विधि बुझल सिनेहा ॥
परिमल बिस लेखि मधुमालति देखे
मधुकर की करत माने ।
दुसह वेदन तेज हरिपद जुग भज
नृप सिद्धि नरसिंह भाने ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या-२४ ।

[अर्थ—मन में कौनो प्रकारक भय नहि राखि, हे हरि ! हम अहाँक शरणापन्न भेलहुँ । (मुदा) भाव बुझल जे अहाँ हमरा प्रति विरक्त छी । जे भाव प्राणहु सँ बढ़ि (अहाँक) प्रेयसी अछि तकरहि सग बिलास करैत छी । हे माधव ! हम (जे) रमणी (राधा), अहाँके की कहब ? जे अतएव नीक छल से सभटा हमर कम-दोष सँ प्रसिक्कल भऽ गेल । अत्यन्त विमूढ़ हम, पहिने बुझल जे हमरा सहस (त्रिष) अहाँके दोसर (नायिकाक) शरीर नहि अछि । मुदा भाव नीक जेकाँ अहाँक स्नेह केँ बुझि जेल अछि, जे (अहाँक) वचन में त समु-तक उद्गार अछि मुदा हृदय बज्र सहस (कठोर) अछि । परिमल केँ विषवत् बुझि मधुमालती केँ देखि कऽ मधुकर की पान करैत ? सिद्धि नरसिंह (नायिका सँ) कहैत छथि, (एहि विरह जन्य) दुस्सह वेदना केँ त्वागि हरि (श्री कृष्ण) क पदद्वयक भजन करू ।]

श्रृंगारी

७

अएलाहुँ गेलाहुँ ई भेलि साति ।
कुपहु सङ्गे गमाउलि राति ॥
भमर बृक्ष कमलनि कला ।
कीट कैपचय कुसुम दला ॥
न कच आकुल न कुचै रेह ।
नहि पराभवै भामर देह ॥
जीवन रूप कला सर्वे आगरि ।
नाह गमार कि करति नागरि ।
(श्रीसिद्धि नरसिंहमठ-अद्वैतानाम् ।)

—भा० गी० सं०, पद संख्या—२६ ।



[अथ आवागमन कैल तकर ई दण्ड भेटल । गमार
पहुक संगे राति बिताओलि । भ्रमर ने कमलनीक सोन्दर्य
के बुझेछ । कीड़ा त कुसुमक दल के कपचिते अछि । ने क
केश बिखरल, ने नख-धते भेल आगे पराभव से शरीरे भ्रमर
भेल । योवन, सोन्दर्य एले कला, सभक आगारि नायिका !
(मुदा जखन) नाथे गमार हो तऽ सुरसिका की करति ?]

विशेष—एहि पद मे भण्डिताक पांक्ति नहि अछि, मुदा
पदक नीचा मे 'श्रीसिद्धिनरसिंहमल्लदेवानाम्' लिखि एकर
स्पष्टतः निर्देश अछि जे ई पद 'सिद्धि नरसिंहमल्ल'क छन्हि ।

मालव

८

मास धरै उगए कलानिधि उगए अपन कए साज ।
सुख मुख सम नहि पावए तेँ खिन मने गुनि लाज ॥
गिम रूप रमनि कहब कत कम्बु कएल जल भाप ।
पवन बलित नव पङ्कज कुच-कोरक डरेँ काप ॥
सामर चामर निन्दए सुन्दर चिकुर कलाप ।
भौंह मनोहर कि कहब कामे तेजल निग्र चाप ॥
मन घाओल बाओल नहि आसा न तेजए लोभ ।
एसनि रमनि नृपसिंह कहू हरिक निकट पए सोभ ॥

—भा० गो० सं०, पद संख्या—५० ।

[अर्थ—मास मे, पक्ष मे, चन्द्रमा अपन सभ सजा
(कला) क संग (कामिनीक मुखक समता पदबाक प्रयास मे)
संगत अछि किन्तु अहाँक मुखक समता नहि पाबि (दोसर पक्ष
मे) लजा कए खिन्न-मन भऽ जाइछ। हे रमणी! (अहाँक)
प्रोवाक रूपक (विषय मे) कतेक कहब? संख लज्जित भए
जल मे निमग्न भऽ गेल। (सहिना) पवन-चालित नव-कमल
(अहाँक) कुच-कलीक भय सँ कापि रहल अछि। (अहाँक)
मुन्दर केश-राशि कारी चामरक निन्दा करैत अछि। (अहाँक)
मतोहर भईहुक (विषय मे) की कहब? (बुझि पड़ेछ जे
ओकरहि कारण) नामदेव अपन घनुष के छोड़ि देलन्हि।
मन (अहाँक पाछाँ) दीइल, मुदा पकड़ि नहि सकल। तथापि
(अहाँकेँ प्राप्त करबाक) लोभ जे अछि से आशा केँ नहि छोड़ि
रहल अछि। नृसिंह कहैत छथि जे एहि प्रकारक रमणी
हरि (श्री कृष्ण)क लग मे रहबा सँ शोभायमान होइत
छथि।]

[विशेष—इन्दु 'रागादिगण' मे (पृष्ठ—५३-५४)

निम्नलिखित पाठान्तर ओ पक्ति-व्यत्ययक संग उपलब्ध
होइछ—

मासि पखें उगए कलानिधि लेए सकल निभ साज ।
तुअ मुख सम नहि देखिअ तँ खिन मनें गुनि लाज ॥
कहुवहुँ कपोल पुरुष धनि जाहि कर रह अदुराज ।
जे अछ एहि महितल जे घरजल एतेन भाग ॥
सामर चामर निन्दए कोमल केन कनाय ।
भौह मतोहर कि कहब वामें तेजल सर चाप ॥
पवन चलित नव पल्लव कुच कोरक तरें काप ।
पके बाघोल नहि पाघोल भासा लुब्धल लोभ ।
ओहनि रमनि नृपसिंह कह हरिहि निकट पए सोभ ॥

मालव

जाहि देस पिक पञ्चम नहि गावए कुसुमित नहि कानने ।
 छव कहु मास भेद नहि जानए सहजहि अवल मधने ।
 सखि हे सेहे देश गेला पिआ मोरा ।
 रसमति बानी जतहि न जानए मुनिअ प्रेम बड़ थोरा ।
 कहलिओ कहिनी जतए न बूझय इज्जित कि करत काजे ।
 कजोने परि ततए रतल मोर बालभु मुनि भए निगुन समाजे ॥
 की अपना केँ लघु कए मानव कि कह्य सन्धिक बड़ाइ ।
 की हमे गरवि गमारि महज तह की रति बिरत कन्हाइ ॥
 सिंह नृपति कह धैरज कए रह हरिक चरण कर सेवा ।
 पड़ल घनाइति ते छथि अतए बालभु दोस न देवा ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२१।

[अर्थ—जाहि देश मे कोइली पंचम (स्वर मे) गान
 नहि करैछ, (जतय) कानन मे फूल नहि फुलाइछ, (जतय)
 छवो कहु ओ विभिन्न मासक भेद नहि जनेत छथि (अर्थात्
 सालो भरि एकहि रंग बुझि पड़ैछ) ओर (जतय) कामदेव
 स्वभावतः निर्मल छथि । हे सखी ! हमर प्रिय ताही देश
 कऽ गेला जतय केओ सरस वाणी नहि जनेछ । सुनेत छी,
 (जतय) प्रेम बड़ थोड़ छथि । जतय कहवो बात केओ नहि
 बुझेछ (फेर) संकेत कोन काज करत ? हमर बल्लभ अतय
 कोन प्रकारेँ आसक्त भऽ गेलाह अछि ? गुणी भऽ ओ
 निर्गुणक समाज मे (कोना छथि) ? की हम अपना केँ
 हीन कऽ कऽ बुझू अथवा एकरा हुनक बड़पन कहू ? की हम
 स्वभावतः बड़ गमारि छी ? वा कृपण रति-विरत भऽ
 गेलाह छथि ? सिंह नृपति कहैत छथि—दैत्यक संग रहि
 हरिक चरणक सेवा करू । ओ पराधीन छथि तँ अन्यथ
 छथि एहि लेल बल्लभ केँ दोष नहि दिखीन्ह ।]

विशेष—प्रस्तुत पद निम्नलिखित पाठभेदक संग नेपाल पद्यावली
 (दृष्टव्य-राष्ट्रभाषा परिषद् पटना द्वारा प्रकाशित, विद्यापति पदावली,
 प्रथम भाग, पृष्ठ-३६९-३७०, पद संख्या-२६२) मे सेहो पाओज जाइछ—

जाहि देस पिक मधुकर नहि गूजर कुसुमित नहि कानने ।
 धुव फलु माल भेद नहि जानए सहजहि अवल भदने ॥ भू० ॥
 सखि दे से देस पिभ गेल मोरा ।
 रसमति बानी जतए न जाणिय सुनिअ पेम बड़ थोरा ।
 कलिओ कहिनी जतए न गुणए की करति अहित काजे ।
 कजोन परि तगए रतन अछु बालभु नि (र) भय निगुण समाजे ।
 हमे अपना के धिक कए मानल कि कहव तन्हिकि बडाइ ।
 कि हमे गुरुनि गमारि (नि) सबतह कि रति विरत कडाइ ॥

—भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

—एहि पद मे अणितक पंक्ति अभाव अछि मुदा 'भनइ विद्यापतीत्यादि'क संकेत द्वारा ई स्पष्ट होइल जे ई विद्यापतिक रचना अछि । एहि पदक आकर छोट 'नेपाल-पदावली' के अकृत्रिम पद संग्रह मानि एहि मे प्राप्त विद्या-पतिक पद के विद्युद्ध मानल जाइत अछि । मुदा प्रस्तुत पद के उपर्युक्त 'भाषा-गीत संग्रह' मे 'सिंह नृपति'क अणित से पदैत छी । भाषा-गीत-संग्रहक प्राप्ति छोट नेपाले धीक । तँ एकरहु अकृत्रिमता पर अविश्वास नहि कैल जा सकैछ । एहि स्थिति मे, एहि दुनू संग्रहक पद मे ककरा प्राणायिक मानल जाय ? विद्यापति ओ सिंह नृपति मे एकर वास्तविक रचयिता के छथि ? सभ से विचारणीय विषय त ई जे नेपाल पदावलीक अकृत्रिमता ओ विद्युद्धता कतेक दूर धरि अक्षय रहैछ ?

१०

दुइ तनु एक जिअ
 ते पिअ निहुर हिअ
 एकहि नगर परहेसिआ । ए मे माइ है ।
 के जान कजोने कह
 ते रसि रहल पहु
 आत दिन सति त बिहुसिआ । ए मे माइ है ।
 सून दसओ दिसा
 कैसे कए खेसबि निसा
 आज विरत मोर रसिआ । ए मे माइ है ।
 सिंह नृपति कह
 घैरज कए रह
 हरि मने तोहहि पेआसिआ । ए मे माइ है ।

—भा० गी० सं०, पद संख्या - ११२

[अर्थ—हू शरीर आ' एक प्राण । (मुदा) से प्रिय
(आइ) कठोर-हृदय भऽ गेल छथि । एकहि नगर मे
परदेशी (बनल) छथि ।

के जनैत छथि ! के कहत ? जे एहि (कारण) सँ
प्रियतम हमि रहला छथि । आन दिन जकाँ प्रसन्न नहि छथि ।

दशो दिशा शून्य छथि, कोना कऽ राति लेपबि ? आइ
हमर रसिक विरक्त छथि ।

सिंह नृपति कहैत छथि, धैर्य राखू, हरिक मन मे अही
प्रेमसी धिकसन्निह ।]

राजविजय

हे मधइया

एँ बेरि जेवा देहे नीकें ।
पुनु पुनु आधोव बीके ॥
शधि दुव हमर पसारे ।
दान होहऽ अधिकारे ॥
देखो मए मोतम हारे ।
सैप्रथो न घरह कँदहारे ॥
बहुँ मोर बिर परवासे ।
बिसरल मदन तरासे ॥
सिंह नृपति कह सारे ।
भज धनि नन्दकुमारे ॥

—भा० गी० सं०, पद संख्या—१२३।

[अर्थ—हे माधव ! एहि बेर नीक जेकां (फिरि कऽ) जाय दिप्र । फेर-फेर (दूध-दही) बेचबाक लेल आएव । दही दुधेक हमर व्यापार अछि या' दान (लेब) अहाँक अधिकारे अछि । हम मोतीक हार दंत छी, मुदा तस्यो अहाँ नाव (लेमि कऽ पार करबाक लेल) करगारि नहि धारण करैत छी । हमर प्रियतम चिर प्रवासी छथि, कामदेवक कष्ट केँ (अर्थात् हमरा कामदेव कतेक कष्ट दंत छथि) विमरि गेल छथि । 'सिंह नृपति' सारवरु केँ कहैत छथि, हे धनि ! नन्दकुमार श्री कृष्णक भजन कर ।]

असावरी

बरु लेहे कन्हारै करह पार ।
लह लाय मुदरिआ कोटिहार ॥
जलद जाल दिग मग अँघार रे ।
आज ओर मोरा दधि पसार ॥
विषम जमुना तरि कुलंगि घाट रे ।
साँझ परति वन मोझ बाट ॥
सिद्ध नृपति कह सुन सदाति रे ।
सबै परिहारि भज सारंगपानि ॥

भा० गी० सं०, पद संख्या—१२४

[अर्थ - हे कनूया ! भनहि लाखो मुद्रिका ओ करोड़ी
हार लिख (मुद्रा) हमरा (नदी) पार कऽ दिअ । सवन
मेष सँ दिशा ओ बाट अन्धकारपुक्त अछि । याह हमर
इहीक बेचव सेहो समाप्त भऽ गेल । भयंकर यमुना नदी आ'
तकर ई कुलग घाट । साँझ पड़ि जैत आ' वन वऽ कऽ बाट
छेक । सिंह नृपति कहैत छथि, हे सयानि ! मुनु, सभ केँ
छोड़ि मारगवाए (ओ कृष्ण) क भजन करू ।]

नट

१३

कैसे कए बेसब एहि देश ।
एहि ऋतु पिपा परवेश ॥
सगुण करैते दिन गेल ।
दिवस बरिस सम भेल ॥
सपने छाएल जलि गेल ।
दिठि भरि देखिअ न भेल ॥
रघणि भेल मोरि काल ।
सुमरि सुमरि हिय साल ॥
कचि लाइ लवल सिनेह ।
जीवहि परल सदेह ॥
नृपति सिंह एह भान ।
विरहिति वेदन जान ॥

—राग भजन संग्रह, पद संख्या—५१

[अर्थ—कोना कऽ एहि देश में रहव ? (अखन कि) एहि अनु में पिया परदेश में छथि। सगुण उचारैत दिन बीतगेल। (एक-एक) दिन, वर्ष सहस्र भऽ गेल। नपना में (ओ) अएलाह आ' चल गेलाह। भरि अखि देखियो ने भेल। राति हमरा लेल काल भऽ गेल। मन पाड़ि-पाड़ि हृदय केँ जोड़ा होइत अछि,। ई नव स्नेह कोन काजक १ (जाहि सँ) प्राणी सन्देह में पड़ि गेल। नृपति निह ई कहैत छथि, (ओ) विरहिणीक वेदना केँ बुझेत छथि।

